(देश देशान्तरों में प्रचारित, सबसे सस्ता, उच्च कोटि का आध्यात्मिक-पत्र)

सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई ।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई ॥

वार्षिक मूल्य २) सम्पादक-श्रीराम शर्मा आचार्य । एक अंक ≡)

वर्ष ६ } मथुरा, १ जौलाई सन् १९४५ ई० ब्रह्मवर्चस, शान्ति कुञ्ज, हरिद्वार { अंक

खबरदार, किसी पर अन्याय मत करना ।

अन्याय एक प्रकार की दुधारी तलवार है जो निर्बल को घायल करती है किन्तु साथ ही घायल करने वाले को भी अछूता नहीं छोड़ती । पड़ोसी के छप्पर में आग लगा कर, अपना घर बचा लेना मुश्किल है इसी प्रकार दूसरों पर अन्याय करके स्वयं चैन से करना कठिन है । अन्याय एक तेजाब है जो पहले उसी पात्र पर असर करता है जिसमें वह रखा हुआ है । मनुष्य कागज की पुड़िया के समान है जो अपने अंदर अन्याय को धारण करता है-अन्यायी बनता है—वह कुछ समय में अपने आप ही गल कर नष्ट हो जाता है ।

इसलिए आप अन्याय से उसी तरह दूर रहिए जैसे सिंह और सर्प से दूर रहते हैं । इन्द्रियों के और मनोविकारों के बहकावे में आकर अपनी आत्मा के साथ अन्याय मत कीजिए । अहंकार से उद्धत होकर एवं लालच से अन्धे होकर दूसरों का अधिकार मत छीनिए, उनके स्वत्वों को हरण मत कीजिए । क्योंकि अनाचार और अत्याचार पारे की तरह है जो किसी को पच नहीं सकता, उसकी चमक पर मुग्ध होकर लोग पेट में रखने की कोशिस करते हैं परन्तु अन्याय रूपी पारा घमंडी और लालचियों की मूर्खता पर हँसता हुआ उनके रोम रोम को चीर कर बाहर निकलता है । आप सूक्ष्म दृष्टि से न्याय अन्याय विवेचना कीजिए और जिस बात को अन्याय समझें उसे त्यागते हुए न्याय के पथ पर आरुढ़ हो, यही कल्याण का मार्ग है ।

मनुष्य मात्र को प्यार करो

(जोसेफ मेजेनी)

हमें मनुष्य जाति को सिखलाना है कि सम्पूर्ण मनुष्य जाति एक अङ्गी के समान है, हम सब उसके अङ्ग हैं, अतएव उस अङ्गी के समान है, हम सब उसके अंग हैं, अतएव उस अङ्गी की पुष्ट और वृद्धि के लिए परिश्रम करना और उसके जीवन को अधिक उपयोगी और उद्यमी बनाना हम सबका कर्त्तव्य है। उन आत्माओं को भी उन्नत और पवित्र बनाना हमारा काम है जो स्वयंम उन्नति और पवित्रता के विरोधी हों। ईश्वरीय इच्छा इस पृथ्वी पर मनुष्य जाति के परस्पर मेल मिलाप से ही पूरी हो सकती है, इसलिये अभी हमको यहां पर एक ऐसी एकता की स्थापना करनी है, जो सर्वसाधारण की दशा को उन्नत करने वाला हो, जो भिन्न भिन्न भागों में विभक्त मनुष्यों को एक केन्द्र में लाने वाली हो और कुटुम्ब और देश दोनों को इस उच्चतम और पवित्र उद्देश्य के लिये प्रेरित और प्रवृत्त करें।

जिस प्रकार ईश्वर के नियम और उसकी दया सम्पूर्ण मनुष्यों के लिये है, उसी प्रकार तुम्हारे वचन और कर्म भी मनुष्यमात्र के लिये होने चाहिये। चाहे तुम किसी देश विशेष में रहते हो, किन्तु जहां कोई मनुष्य ऐसा मिले, जो सत्य, न्याय और धर्म के लिये लड़ रहा हो तुम उसको अपना भाई समझो। चाहे कहीं पर किसी मनुष्य को भूल, अन्याय या अत्याचार के कारण कष्ट पहुँच रहा हो, वह तुम्हारा भाई है। स्वाधीन हो या पराधीन तुम सब भाई हो, तुम्हारी जड़ एक है एक ईश्वरीय नियम है तुम सब अधीन हो और एकही अभीष्ट स्थान पर तुम सबको पहुंचना है। अतएव तुम्हारा धर्म और तुम्हारे कर्म एक होने चाहियें, क्यों कि एक ही झंडे के नीचे होकर तुम्हें लड़ना है। यह मत कहो कि—"[illegible] भाषा हम बोलते हैं, वह एक नहीं" हमारे कर्म, [illegible]री इच्छायें, हमारा जन्म और हमारा मरण एक ऐसी भाषा है, जिसको सब जानते और समझते [illegible] यह भी न कहो कि "मनुष्य जाति असंख्य असीम है और हम अल्प और निर्बल हैं।" ईश्वर को नहीं देखता, किन्तु भाव को जांचता है।

मनुष्य जाति को प्यार करो। जब तु[illegible] काम अपने कुटुम्ब या देश की सीमा में [illegible] होकर करने लगो तो पहिले अपने आत्मा [illegible] कि—'यदि यही काम जो मैं अब करने लगा [illegible] सारे मनुष्य करते और सब मनुष्यों के लिये किया जाता तो यह मनुष्य जाति के लिये हितकर होत[illegible] वा अनिष्टकर? यदि तुम्हारी आत्मा तुम्हें बतला[illegible] कि यह अनिष्ट कर होगा तो कदापि उसका अनुष्ठा[illegible] न करो, चाहे तुम्हें यह भी विश्वास हो कि इस धर्[illegible] का परिणाम तुम्हारे देश या कुटुम्ब के लिये सद[illegible] हितकर होगा।

तुम इस सार्वजनिक धर्म के उपासक बन[illegible] जातीय एक्य और समता का उपदेश करो, जिसक[illegible] आज कल सिद्धांत रूप से तो माना जाता है, किन्तु आचरण से नहीं। जहाँ कहीं और जितना तुम ऐसा कर सकते हो, ऐसा ही करो। इससे अधिक न ईश्वर तुमसे चाहता है और न मनुष्य आशा कर सकता है। किन्तु मैं तुम्हें बतलाता हूं कि यदि तुम दूसरों को ऐसा न बना सको और केवल आप ही ऐसे बन जाओ तब भी तुम मनुष्य जाति की सेवा करते हो। ईश्वर शिक्षा की सीढ़ियों को नापता है वह मनुष्य जाति को धर्मात्माओं की संख्या औ[illegible] अभिरुचि के अनुसार बढ़ने देता है और जब तुम[illegible] में धर्मात्मा, परोपकारी अधिक होंगे तो ईश्वर जो तुम्हें गिनता है आप तुम्हें बतलायेगा कि तुम्हें क्या करना चाहिये।

दुनियाँ में अगर करोड़ों ईसा, मुहम्मत, बुद्ध, राम या कृष्ण जन्म लेलें तो भी तुम पार नहीं हो सकते। अपने प्रयत्न और परिश्रम से ही मनुष्य का कल्याण होता है।

मथुरा १ जौलाई सन् १९४५ ई०

प्रेम का वास्तविक स्वरूप ।

जिस वस्तु को 'प्रेम' कहा जाता उसके अनेकानेक स्वरूप इस संसार में दृष्टिगोचर होते हैं। स्त्री प्रेम, पुत्र-प्रेम, धन-प्रेम, कीर्ति-प्रेम, व्यसन-प्रेम में व्यस्त व्यक्ति अपने को प्रेमी सिद्ध करते है। यह प्रेम का भौतिक स्वरूप है। भौतिक-प्रेम में तत्कालीन आकर्षण खूब होता है और उसकी प्रतिक्रिया में आनन्द-दायक अनुभूतियां भी परिलक्षित हैं। उपरोक्त स्त्री, धन, कीर्ति आदि के प्रेम में मनुष्य को इतना आनन्द आता है, कि इन्हें भव-बन्धन-कारक और अन्त में दुखदायक समझते हुए भी छोड़ता नहीं और सारी आयु उन्हीं के पीछे व्यतीत कर देता है।

भौतिक-प्रेम, आध्यात्मिक-प्रेम की एक छाया है। उसकी छोटी सी तस्वीर या प्रतिमा इन विषय भोगों में देखी जा सकती है। भौतिक-प्रेम का अस्तित्व इसलिये है, कि हम इस तस्वीर के आधार पर असली वस्तु को पहचानने और प्राप्त करने में सफल हो सकें। प्रकृति की दुकान में यह नमूने की पुड़िया बँट रही हैं और बताया जा रहा है, कि देखो इस एक जरा से टुकड़े में जितना मज़ा है, यदि ऐसे ही मज़े का अक्षय भंडार तुम्हें पसंद है, तो उस असली वस्तु को-आध्यात्मिक प्रेम को-प्राप्त करो। हमारे पथ-प्रदर्शक सोने का टुकड़ा दिखाते हुए बता रहे हैं कि ऐसे ही सोने की अगर तुम्हें जरूरत हो, तो जाओ उस सामने वाली खान में से मन-मानी तादाद में खोद लाओ, परन्तु हाय! हम कैसे मन्द बुद्धि है, जो इन नमूने की पुड़ियों को चाटने में इतनी उछल कूद कर रहे हैं और खज़ाने की ओर दृष्टि उठाकर भी नहीं देखते।

प्रेम का गुण है आनन्द! प्रेम करने पर आनन्द प्राप्त होता है। स्त्री, धन, कीर्ति आदि से प्रेम करने में आनन्द आता है या आनन्द के कारण प्रेम करते हैं। हम पत्थर, राख कूड़ा या कौआ, चील, गीदड़ आदि से प्रेम नहीं करते, क्योंकि उनमें आनंद का अनुभव नहीं होता या आनन्द अनुभव नहीं करते इसलिए प्रेम नहीं होता। पड़ौसी के खज़ाने में लाखों रुपये भरे पड़े हों पर उनसे हमारी कोई ममता नहीं यदि वे सब रुपये आज ही नष्ट हो जाय, तो हमें कोई वेदना न होगी। इसी प्रकार अन्य व्यक्ति के स्त्री, पुत्र, परिजन मर जांय या किसी की कीर्ति को आघात पहुंचे तो दूसरा कौन परवाह करेगा?

पड़ौसी का रुपया भी उसी चांदी का बना हुआ है, जिसका कि अपना, पड़ौसी के स्त्री पुत्रों के शरीर भी वैसे ही हैं जैसे कि अपनों के, किन्तु अपने रुपये से प्रेम है, अपने स्त्री पुत्रों से प्रेम है यही वस्तुयें पड़ोसी की भी है, पर उनसे प्रेम नहीं। यहां प्रेम का असली कारण स्पष्ट हो जाता है। जिस वस्तु पर हम आत्मीयता आरोपित करते हैं, जिससे ममत्व जोड़ते हैं, वही प्रिय लगने लगती है और प्रेम के साथ ही आनन्द का उदय होता है। निश्चय ही किसी भी जड़ वस्तु में स्वयं प्रेमाकर्षण नहीं है, संसार की जिन भौतिक वस्तुओं को हम प्रेम

करते हैं, वे न तो हमारे प्रेम को समझती हैं और न बदले में प्रेम करती हैं। रुपये को हम प्यार करते हैं, पर रुपया हमारे प्रेम या द्वेष से जरा भी प्रभावित नहीं होता। पैसा खर्च हो जाने पर हमें उस पैसे की बहुत याद आती है, पर उस पैसे को रत्ती भर भी परवाह नहीं कि जो व्यक्ति हम से इतना प्रेम करता था, वह जिन्दा है या मरगया। बात यह है कि संसार के किसी पदार्थ में जरा भी आकर्षण या आनन्द नहीं है, जिस पर आत्मा की किरणें पड़ती हैं वही वस्तु चमकीली प्रतीत होने लगती है, जिस पर आत्मीयता आरोपित करते हैं, वही आनन्द-दायक, आकर्षक एवं प्रिय पात्र बन जाती है। प्रेम और आनन्द आत्मा का अपना गुण है बाहरी पदार्थों में तो उसकी छाया देखी जा सकती है।

जीव को आनन्द की प्यास है, वह उसी की तलाश में संसार में इधर उधर ओस चाटता हुआ मारा-मारा फिरता है, किन्तु तृप्ति नहीं होती। कुत्ता सूखी हड्डी को चबाता है और हड्डी द्वारा मसूड़े छिलने से रक्त निकलता है, उसे पीकर आनन्द मानता है। हम लोग भौतिक वस्तुओं के प्रेम में आनन्द का अनुभव करते हैं। इसका मूल कारण असली आध्यात्मिक प्रेम है। यदि आत्मीयता हटाली जाय तो वही कल की प्यारी वस्तुयें आज घृणित या अप्रिय प्रतीत होने लगेंगी। स्त्री का दुराचार प्रकट हो जाने पर वह प्राण-प्रिय नहीं रहती, वरन् शत्रु सी दृष्टिगोचर होती है। पिता पुत्र में, भाई भाई में, जब कलह होता है और आत्मीयता नहीं रहती तो कई बार एक दूसरे की जान के ग्राहक होते हुए देखे गये हैं। मकान, जायदाद, गाड़ी, सवारी जब अपने हाथ से बिककर दूसरे मालिक के हाथ में चले जाते हैं, तो उनकी रक्षा व्यवस्था की परवाह नहीं रहती, क्योंकि अब उन में से आत्मीयता छुड़ा ली गई। सुस्वाद भोजन, नाच-रंग, विषय भोगों का आनन्द भी अपने भीतरी ही है। यदि पेट में अजीर्ण हो, तो मधुर भोजन कडुआ प्रतीत होता है। गुप्त रोगों की व्यथा हो, तो स्त्रीभोग पीड़ा-कारक बन जायगा, नेत्र दुख रहे हों तो किसी नाच रङ्ग में रुचि न होगी। इन्द्रिय भोग जो इतने मधुर प्रतीत होते हैं, वास्तव में उनके अन्तर्गत प्रकाशित होने वाली अखण्ड ज्योति के ही स्फुल्लिंग है। अन्यथा बेचारी इन्द्रियां क्या आनन्द दायक हो सकती हैं।

निश्चय ही प्रेम और आनन्द का उद्गम आत्मा के अन्दर है। उसे परमात्मा के साथ जोड़ने से ही अपरिमित और स्थायी आनन्द प्राप्त हो सकता है। सांसारिक नाशवान वस्तुओं के कंधे पर यदि आत्मीयता का बोझ रखा जाय, तो उन नाशवान वस्तुओं में परिवर्तन होने पर या नाश होने पर सहारा टूट जाता है और उसके कंधे पर जो बोझ रखा था, वह सहसा नीचे गिर पड़ता है, फल स्वरूप बड़ी चोट लगती है और हम बहुत समय तक तिलमिलाते रहते हैं। धन नाश पर, प्रियजन की मृत्यु पर, अपयश होने पर कितने ही व्यक्ति धाड़ें मार कर रोते बिल-बिलाते और जीवन को नष्ट करते हुए देखे जाते हैं। बालू पर महल बनाकर उसे अजर अमर रहने का स्वप्न देखने वालों की जो दुर्दशा होती है, वही इन हाहाकार करते हुए प्रेमियों की होती है। भौतिक पदार्थ नाशवान हैं, इसलिए उनसे प्रेम जोड़ना एक बड़ा अधूरा और लँगड़ा, लूला सहारा है, जो कभी भी टूटकर गिर सकता है और गिरने पर प्रेमी को हृदयविदारक आघात पहुँचा सकता है। प्रेम का गुण तो आनंदमय है। जो दुखदायी परिणाम उपस्थित करे वह प्रेम कैसा? इसीलिये तो आध्यात्म तत्व के आचार्यों ने भौतिक प्रेम को 'मोह' आदि घृणास्पद नामों से संबोधन किया है।

प्रेम का आध्यात्मिक स्वरूप यह है कि आत्मा का आधार परमात्मा को बनाया जाय। चैतन्य और अजर अमर आत्मा का अवलम्बन सच्चिदानन्द परमात्मा ही हो सकता है। इसलिये जड़ पदार्थों से, भौतिक माया बन्धित वस्तुओं से, चित्त हटाकर परमात्मा में लगाया जाय। आत्मा के प्रेम का

परमात्मा उत्तर देता है और आपस में इन दोनों प्रवाहों के मिलने पर एक ऐसे आनन्द का उद्भव होता है, जिसका वर्णन नहीं हो सकता।

आत्मा का विशुद्ध रूप ही परमात्मा है। नव की उच्चतम, परम सात्विक, परम ऐश्वर्य और आनंद मयी अवस्था ही ब्राह्मीस्थिति है। ब्रह्म और ब्राह्मीस्थिति एक ही बात है। इसी, परम तत्व की, इसी केन्द्र की चर्चा, कीर्तन, जप, स्तुति अनुनय, विनय, पूजा अर्चा करना भक्ति का वास्तविक उद्देश्य है। ईश्वर से प्रेम करना चाहिये, ब्रह्मानन्द में मग्न रहना चाहिए, आत्मा के विशुद्ध स्वरूप परमात्मा की भक्ति करनी चाहिए, इसका सीधे शब्दों में तात्पर्य यह है कि परम सात्विक निर्दोष, शुद्ध अवस्था में पहुंचने के लिए हर घड़ी व्याकुल रहना चाहिये, एक क्षण के लिए भी उस आकांक्षा को भुलाना न चाहिये। हमें सच्ची भक्त की सच्चे प्रेम की उपासना करनी चाहिए। आत्मा से परमात्मा से प्रेम करना चाहिए। अपने को मनुष्यता की आदर्श प्रतिमा बनाने के लिए निरंतर विचार और कार्य करना चाहिए। यही स्वार्थ और यही परमार्थ है। प्रेम का सच्चा अध्यात्मिक स्वरूप भी यही है।

आत्मा प्रेम का केन्द्र है। विश्व व्यापी आत्मा-परमात्मा—समस्त प्राणी समाज हमारे प्रेम का केन्द्र होना चाहिए। घट घट वासी परमात्मा से हम प्रेम करें। प्रत्येक प्राणी की आत्मा को ऊँचा उठाने, विकसित करने और सुखी बनाने में हम अधिक से अधिक ईमानदारी मेहनत और दिलचस्पी के साथ काम करें, यही परमात्मा के साथ प्रेम करने का सच्चा तरीका है।

जो इस सेवा पथ पर प्रेम मार्ग पर चलता है उसे ही जीवन का सच्चा सुख प्राप्त होता है। वह सुख इन्द्रिय भोगों और स्वार्थ साधन के सुख की अपेक्षा लाखों गुना अधिक आनन्द दायक है।

निरन्तर शिक्षा प्राप्त करो।

(जोसफ़ मेजिनी)

तुम शिक्षा पाने के योग्य हो, तुममें से प्रत्येक में आत्मिक शक्तियों और मानसिक विकासों का एक ऐसा पुंज है जिसमें केवल शिक्षा ही प्राण डाल सकती और उसको उत्तेजित कर सकती है। शिक्षा के बिना वे सारी शक्तियां न केवल दबी रहेंगी, किन्तु निकम्मी हो जायेंगी। या यदि प्रकट होंगी तो कुसमय और नियम विरुद्ध, जिनसे लाभ के स्थान में और हानि होगी।

शिक्षा ही आत्मा का भोजन है, जिस प्रकार हमारे शरीर और इन्द्रिय बिना प्राकृतिक भोजन के न बढ़ सकते और न स्थिर रह सकते हैं, उसी प्रकार हमारा आत्मिक और मानसिक जीवन भी फैलने और विकास पाने के लिये विज्ञान के विशाल समुद्र में शिक्षा के पोत को चाहता है।

हमारा जीवन एक पुष्प के समान है। भूमि वही है, एक ही प्रकार का खाद सबको दिया जाता है, परन्तु प्रत्येक पुष्प जाति अपनी भिन्न भिन्न आकृति, छवि और स्वभाव रखता है। प्रत्येक मनुष्य मानव जाति का एक अंग है, जीवन को जातीय जीवन से पुष्ट करता है और बढ़ाता है यह पुष्टि और वृद्धि का काम शिक्षा के द्वारा पूर्ण होता है, जो जातीय और सामाजिक उन्नति के परिणाम को साक्षात् या एक दूसरे के द्वारा प्रत्येक मनुष्य तक पहुँचा देती है।

अतएव तुम्हारे वास्तविक जीवन के लिये शिक्षा एक आवश्यक वस्तु ही नहीं है किन्तु अपने सजातीय भाइयों के साथ, उन पूर्वजों के साथ जो तुमसे पहले हो चुके हैं, सच्चा सम्बन्ध और पवित्र मेल शिक्षा के बिना तुम उत्पन्न ही नहीं कर सकते। शिक्षा मनुष्य जीवन का आधार है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त हमें अपना ज्ञान बढ़ाने के लिए, शिक्षा के लिए प्रयत्न करते रहना चाहिए।

पुरुषार्थी ही विजयी होता है

(डाक्टर रामचरण महेन्द्र एम. ए डी. लिट्)

तुम्हारी हार्दिक कामना होती है कि हम विद्वान् बनें, मजबूत बनें, व्यापार में प्रचुर धन राशि एकत्रित करें, आध्यात्मिक जगत् में अपूर्व धन संग्रह करें पर इन सबकी पूर्ति क्यों नहीं हो पाती ? कारण यह है कि तुम यह समझते हो कि कोई दूसरा ही आकर तुम्हें ये सब कुछ दे जायगा, अपने आप ही ये सब प्राप्त हो जायेगी । तुम्हारा निश्चय निर्बल है। उसमें संशय घुस गया है। खेद है कि तुम अपना इरादा इतना दृढ़ नहीं बनाते कि कार्य सिद्धि हो जाय। जहां एक दो साधारण सी कठिनाइयां उपस्थित हुई, कार्य दुष्कर प्रतीत हुआ कि तुम नौ दो ग्यारह होने की सोचने लगते हो। ऊलजलूल बातें सोचकर तुम अपने कार्य में शिथिलता ले आते हो । तुम्हारे निश्चय ढीले ढाले हो जाते हैं विचार शक्ति अत्यन्त पंगु हो जाती है। तुम्हारा सामर्थ्य नष्ट भ्रष्ट हो जाता है।

संसार की रंगस्थली में वे ही कर्मयोगी विजय लाभ करते हैं जो "निष्फलता", तथा 'भय" की भावना को अन्तःकरण से वहिष्कृत कर देते हैं उसका ध्यान, चिंतन अथवा कल्पना तक नहीं करते, प्रत्युत उस ओर से मुख मोड़ कर सदा सर्वदा निज कार्य-सिद्धि, सफलता, विजय की परम परिपुष्ट साधना की ओर ही अपनी समस्त शक्ति उन्मुख रखते हैं । आत्मश्रद्धा तथा विश्वासपूर्वक अधिकाधिक समय तक अभ्यास करने से भय-से मुक्ति तो मिलती ही है, साथ ही हृदय का दौर्बल्य भी दूर होता है। व्यर्थ अनिष्टकारी चिंतन ही तो हार्दिक दुर्बिलता का मूल है।

तनिक अपने स्वर्ण जैसे सुनहरे जीवन की ओर देखो। तुम क्यों अपनी इच्छाओं का दमन करते हो ? क्यों अपनी आशाओं का खून करते हो तुममें तथा एक उन्नत व्यक्तिमें कौनसा जमीन आसमान का अन्तर है ? कौन तुम्हें अग्रसर होने से रोक रहा है ? तुम स्वयं ही अपने शत्रु बन गए हो।

उठो ! जागृत हो जाओ । अपने वास्तविक स्वरूप को पहिचानो। अपने उज्ज्वल भविष्य को निहारो। तुम तुच्छ नहीं, महान् हो। तुम्हें किसी अशक्तता का अनुभव नहीं करना है। कुछ मांगना नहीं है। तुम अनन्त शक्तिशाली हो। तुम्हारे बल का पारावार नहीं है। जिन साधनों को लेकर तुम पृथ्वीतल पर अवतीर्ण हुए हो वे अचूक ब्रह्मास्त्र हैं। इनकी शक्ति अनेक इन्द्रवज्रों से अधिक है। सफलता और आनन्द तुम्हारे जन्मजात अधिकार हैं। उठो! अपने को, अपने दिव्य हथियारों को भली भांति पहिचानो, काम में लाओ और बुद्धि पूर्वक कर्तव्य मार्ग में जुट जाओ। फिर देखें कैसे वह चीज़ नहीं प्राप्त होती जिसे तुम चाहते हो। तुम कल्पवृक्ष हो (जो सब इच्छा पूर्ति करता है) तुम पारस हो (जो स्पर्श शक्ति से लोहे को स्वर्ण कर देता है) तुम सफलता की साक्षात् मूर्ति हो।

तुम शरीर नहीं हो. जीव नहीं हो. वरन् महान् आत्मा हो। तुम वासनाओं के गुलाम नहीं हो, आदतें तुम्हें मजबूर नहीं कर सकतीं। पाप तथा अज्ञान में इतनी शक्ति नहीं है कि वे तुम्हारे ऊपर शासन कर सकें।

स्मरण रक्खो अपने को हीन, नीच, पतित, पराधीन और दीन हीन मानना एक प्रकार की आत्म हत्या करना है।

आध्यात्मशास्त्र का सन्देश है कि—"ऐ महान पिता के महान् पुत्रो ! अपनी महानता को पहिचानो। उसे समझने में, खोजने में, और प्राप्त करने में तत्परता पूर्वक जुट जाओ । तुम सत् हो, चित् हो, आनन्द हो । अपनी वास्तविकता का अनुभव करो, उसे दैनिक जीवन में प्रकट करो । निरन्तर पुरुषार्थ करते रहो क्योंकि पुरुषार्थी ही विजयी होता है। ———

नया जन्म कैसे मिलता है ?

मृत्यु के बाद जीव निद्रा में जाता है। इस निद्रावस्था में अपने कर्मों का शोधन करने के लिए [illegible]ग नरक के स्वप्न देखता है । इससे बहुत कुछ [illegible]नसिक संशोधन होता है फिर भी कुछ आदतें [illegible]ेष रह जाती हैं । इन आदतों को आध्यात्मिक भाषा म"संस्कार"के नाम से पुकारा जाता है। यह आदतें तब तक नहीं छूटतीं जब तक कि जीव उन्हें ज्ञान पूर्वक पहचान कर छुड़ाने का वास्तविक प्रयत्न न करे। बन्धन के कारण यही संस्कार हैं। जीव स्वतन्त्र है वह अपनी इच्छानुसार संस्कार बनाता है और उन्हीं में जकड़ा रहता है। यही माया है। माया और कुछ नहीं अज्ञान का एक पर्यायवाची शब्द है। अपने आपको खुद अपने ही अज्ञान के बन्धन में उलझा कर दुखी होना बड़ी विचित्र बात है । इसी गोरखधंधे को दुस्तर माया के नाम से पुकारा गया है।

शुभाशुभ कर्मों का फल भोग लेने के बाद भी उसके पूर्व संस्कार नहीं मिटते । जैसे एक जुआरी [illegible]न सम्पत्ति हार जाने पर भी जुआ खेलने की [illegible]छा करता है, शराबी अनेक कष्ट सहकर भी [illegible]पान की ओर लालायित रहता है. उसी प्रकार पिछली आदतों के कारण जीव पुनर्जन्म के लिये स्थान तलाश करता है । मध्यम श्रेणी के व्यक्ति प्राय: पूर्व जन्म जैसी स्थिति के वातावरण में आकर्षित होते हैं । मान लीजिए एक व्यक्ति इस जन्म में किसान है सारी उम्र उसके मन पर खेती के संस्कार जमते रहे अब वह अगले जन्म में भी दुकानदार होने की अपेक्षा किसानी ही पसंद करेगा। ऐसा नहीं समझना चाहिए कि कोई अन्य शक्ति बलात जन्म दे देती है,जीव स्वयं अपनी इच्छा से संस्कारों के वशीभूत होकर जन्म ग्रहण करता है। ऊपर उड़ता हुआ गिद्ध जैसे तीक्ष्ण दृष्टि से मृत पशु को तलाश करता फिरता है उसी प्रकार जीव निखिल आकाश में अपना रुचिकर वातावरण ढूँढता फिरता है। पहले यह बताया जा चुका है कि तर्क, बहस, या चुनाव करने वाली भौतिक बुद्धि परलोक में नहीं रहती इसलिये वह चालाकियां नहीं जानता और अपने स्वभाव के विपरीत ऊँची या नीची स्थिति की ओर नहीं खिंचता। छोटा बालक राज महल की अपेक्षा अपनी झोंपड़ी को पसंद करता है। उसी प्रकार किसी व्यापारी संस्कारों का जीव राज घर में जन्म लेने की अपेक्षा व्यापारी परिवार में शामिल होना पसंद करता है। आधे से अधिक मनुष्य प्राय: अपने पूर्व घर या परिवार में ही जन्म लेते हैं। यदि पूर्व घर में उसे अपमानित, लांछित या बहिष्कृत न किया गया हो तो वह उसी में या उसके आस पास जन्म लेना चाहता है। दूरी के सम्बन्ध में भी यही बात है । पूर्व जन्म के प्रदेशमें रहना ही सब पसंद करते हैं, क्योंकि भाषा, भेष, भाव की गहरी छाप उनके मन पर अंकित होती है । इटली का मनुष्य भारतवर्ष में या भारतवर्ष का टर्कीमें जन्म लेना प्राय: पसंद न करेगा। कोई विशेष ही कारण हो तो बात दूसरी है।

हमारी स्थूल इन्द्रियों के लिये यह पहचानना कठिन है कि किन स्थानों में कैसी मानसिक स्थिति और आन्तरिक वातावरण है पर परलोकवासी इस बात को बड़ी आसानी से पहचान लेते हैं। वे जहां ठीक स्थिति देखते हैं उसी परिवार के आस पास डेरा डालकर बैठ जाते हैं। परलोक वासियों को पिछले कई जन्मों का भी स्मरण हो आता है यदि वे पिछले घरों में अधिक स्नेह रखते हैं तो उनकी ओर खिंच जाते हैं। बहुत समय व्यतीत हो जाने पर उन परिवारों की ओर अपनी मनोवृत्ति में अन्तर आ जाता है तो भी वे कभी कभी खिंच जाते हैं। किसी विद्वान कुल में एक मूढ़ का जन्म लेना या असुर कुल में महात्मा का पैदा होना दो कारणों को प्रकट करता है (१) या तो वह कुल कुछ पीढ़ियों के उपरान्त बदल गया है और जीव के संस्कार पुराने ही मौजूद

हैं (२) या वह जीव दूसरे ढांचे में ढल गया है और केवल व्यक्तिगत स्नेह के करण उस कुल में खिंच आया है। हम बार बार दुहरा चुके हैं कि जीव स्वतन्त्र है वह अपने आचरणों से संस्कारों में आसानी से परिवर्तन कर सकता है। जब किसी परिवार में कोई विपरीत स्वभाव की सन्तान पैदा होतो समझना चाहिये कि या तो यह कुल बदल गया जीव ने जब इसे पसंद किया था तब इसकी अन्य स्थति थी और अब इतनी घटगई। या वह जीव प्रचीन मोह के कारण ही यह बेमेल संयोग में मिला है।

जिस परिवार में जन्म लेना जीव पसन्द कर लेता है उसके आस पास मँडराने लगता है, अवसर की प्रतीक्षा करता है। जब किसी स्त्री के पेट में गर्भ की स्थापना होती है तो वह उसमें अपनी सत्ता को प्रवेश करता है। और नौ मास गर्भ में रहकर संसार में प्रकट हो जाता है। कई तत्वज्ञों का मत है कि वह गर्भ पर अपनी सत्ता स्थापित कर लेता है और पूरी तरह शरीर में तब प्रविष्ट होता है जब बालक पेट से बाहर आ जाता है। हमारा मत यह है कि संभोग के समय रज वीर्य का सम्मिलन होकर यदि गर्भ कलल बन जाय तो उसमें कुछ ही क्षण उपरान्त जीव अपना अधिकार कर लेता है और गर्भ में रहने लगता है। यह समझना ठीक नहीं कि गर्भ में बालक को बड़ा कष्ट होता है। क्योंकि उस समय तक गर्भ का मस्तिष्क और इन्द्रियां अविकसित होने के कारण जीव की पूरी तरह बंधित नहीं करते और जीव का कुछ विशेष बंधन नहीं होता। वह उदर में घोंसला रखता है पर अपनी चेतना से चारों ओर परिभ्रमण कर सकता है। जन्म लेने के कुछ ही समय पूर्व जब गर्भ की इन्द्रियाँ पूर्णतः परिपक्व हो जाती हैं तो जीव की स्वतन्त्रता नष्ट होती है। तब वह तुरन्त ही बाहर निकलने का प्रयत्न करता है, इसी समय को प्रसव काल कहा जाता है।

गर्भ का शरीर और उसके अवयव यह पूर्णतः जीव की ही इच्छा से नहीं बनते। यह साझे का कार्य है। माता पिता का रज वीर्य और जीव की इच्छा इन सबके मिलने से ही नवीन शरीर बनता है। कुम्हार और मिट्टी इन दोनों में से एक भी दोष पूर्ण होगा तो इच्छित फल की प्राप्ति न होगी। माता पिता का रज वीर्य मिट्टी है और जीव कुम्हार। अनाड़ी कुम्हार अच्छी मिट्टी से भी खराब ब[illegible] बनाता है और अच्छे कुम्हार का प्रयत्न खराब मिट्टी के कारण बेकार रहता है। यदि जीव उत्तम संस्कार वाला हो तो रज वीर्य के भौतिक संस्कारों पर अपना उत्तम प्रभाव डालता है और कुछ न कुछ सुधार कर लेता है, इसके विपरीत कुसंस्कारी जीव उत्तम रज वीर्य में भी कुछ न कुछ दोष मिला देता है। फिर भी माता पिता के संस्कार पूर्ण रूप से मिट नहीं जाते, उनका बहुत बड़ा प्रभाव होता है। माता पिता की भावनाओं का प्रभाव गर्भ शरीर पर पड़[illegible] यदि जीव ऊँचे दर्जे का न हो तो उसे उन [illegible] संस्कारों के क्षेत्र में ही रहना पड़ता है। देखा है कि व्यभिचार द्वारा उत्पन्न हुई संतान बहुधा [illegible] होती है, क्योंकि गर्भाधान के समय माता पिता का अन्तरात्मा पाप कर्म के कारण बड़ा व्यग्र रहता है, वही संस्कार गर्भ पर उतर जाते हैं।

मनुष्य जीवन को सुसज्जित करने वाला बहु-मूल्य आभूषण उसका सुयश है। यशस्वी पुरुष ही सबसे बड़ा भाग्यवान है।

× × ×

मितव्ययता से जीवन संग्राम में आधी विजय मिल जाती है।

× × ×

इस संसार में वह सुखी रहेगा जो अपनी नीति में कमखर्ची, पवित्रता और सत्यता को प्रथम स्थान देगा। इस संसार में स्वस्थ वह रहेगा जो आत्मा संयम और प्रसन्नता को अपना स्वभाव बनालेगा।

× × ×

सद्भाव और सौन्दर्य।

(योगिराज शिवकुमार शास्त्री)

यदि आप अपनी जवानी और सुन्दरता को स्थिर रखना चाहते हैं तो इसके लिये किसी औषधि या कठिन साधन की आवश्यकता नहीं है, केवल अपने पुराने और हानिकारक विचारों को बदल दीजिये।

'युवा, बलवान् और सुन्दर बने रहो" –

इन बातों की आज्ञा ठीक उसी तरह से अपने शरीर को दीजिये जैसे सम्राट् अपनी प्रजा को देता है। धैर्य और विश्वास के साथ इसका नित्य साधन कीजिये, थोड़े ही दिनों में शरीर के ऊपर इसका अद्भुत प्रभाव पड़ेगा। और अब आप इसका अद्भुत प्रभाव स्वयं देख लेंगे तो विश्वास भी बढ़ता जायगा और विश्वास बढ़ने के साथ ही साथ लाभ भी अधिक होगा।

प्रातःकाल उठो और कम से कम अपने शरीर भर का अपने को राजा समझकर चित्त को एकाग्र करके शरीर को सामने तलब करो शरीर को पुकार कहो कि "देखो हमारे अणु में वह आत्मा व्यापक है जो अनादि अनंत, निरायम, निर्विकार, अजर, अमर, और परम सुंदर है। अतः तुम्हें कभी रोगी नहीं होना चाहिये, वृद्ध नहीं होना चाहिये और इसी तरह से कुरूप भी नहीं होना चाहिये। देखो, तुम हमारे अर्थात् परमात्मा के शरीर हो तुम्हारे भीतर हम (जो साक्षात् परमात्मा हैं) रहते हैं अतः तुम सर्वदा निरोग सुंदर, सुडौल, युवा, बलवान, अजर और अमर बने रहो" इन बातों की आज्ञा ठीक उसी तरह से अपने शरीर को दीजिये जैसे सम्राट् अपनी प्रजा को देता है। धैर्य और विश्वास के साथ इसका नित्य साधन कीजिये थोड़े ही दिनों में शरीर के ऊपर इसका अद्भुत प्रभाव पड़ेगा।

शुभ विचार, शुभ भावना और शुभकार्य मनुष्य को सुन्दर बना देता है। यदि सुंदर होना चाहते हो तो मनमें से ईर्षा, द्वेष और बैरभाव को निकाल कर केवल यौवन और सौन्दर्य की भावना करो, कुरूपता की ओर ध्यान न दो। सुन्दर मूर्ति की कल्पना करो, सुन्दर से सुन्दर मूर्ति का ध्यान करो और सौन्दर्य के ही उपासक बनो। प्रातःकाल ऐसे स्थानों पर घूमने के लिये निकल जाओ जहाँ का दृश्य मनोहर हो सुन्दर से सुन्दर फूल खिले हों, सुंदर से सुंदर पक्षी बोल रहे, उड़ रहे और चहक रहे हों। सुन्दर पहाड़ों पर, हरे जंगलों में और नदियों के सुन्दर तट पर घूमो, टहलो, दौड़ो और खेलो। वृद्धावस्था के भावों को अपने हृदय से निकाल दो और बन जाओ एक हंसते हुए बालक के समान, फिर देखो कैसा आनन्द आता है।

किसी की बुराई न करो, किसी की निन्दा न करो, बुराई की ओर दृष्टि ही न डालो। सबमें कुछ न कुछ गुण होता है, सब जगह कोई न कोई स्थान सुन्दर होता है। तुम अवगुण को छोड़ कर गुण की ओर देखो। गुलाब के फूल में भी नीचे कांटा होता है। तुम केवल गुणों की ओर ध्यान दो; कांटे की ओर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है। कांटे को हृदय से निकाल दो। दूसरों का अवगुण देखते देखते, दूसरों की निन्दा करते करते, दूसरों से नाराज होते होते मनुष्य स्वयं अवगुणी, कुरूप और निन्द्य हो जाता है। दया, करुणा, प्रेम और शुभ भावना मनुष्य शरीर को सुन्दर आकर्षक और मनोहर बना देती है।

यथार्थ में वही वीर पुरुष है जो समस्त संसार के विरुद्ध होने पर भी अपने विचारों को स्पष्ट रूप से प्रगट करने में नहीं झिझकता।

× × ×

बुद्धिमानी और धैर्य से चलो, क्योंकि तेज दौड़ने वाले अक्सर ठोकर खाजाते हैं।

× × ×

वीर्यवान्—बनो।

(श्री० स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक)

'वीर्य' इस शब्द में जादू भरा है। इसके उच्चारण करनेसे श्रेष्ठ महान और पवित्र भावों का संचार होने लगता है। ईश्वर वीर्यवान है,रामचंद्रजी बड़े यशस्वी वीर्यवान् राजा थे भीष्म ने आयु भर वीर्य का निग्रह अखण्ड ब्रह्मचर्य धारण किया,वीर्यवान पुरुष क्या नहीं कर सकता, वीर्यवती जाति ही संसार में अपना साम्राज्य स्थापित कर सकती है— इन पांच वाक्यों को पढ़ने से कैसे कैसे भाव हृदय में उदय होने लगते हैं। संसार में जो कुछ निरोग, सुन्दर, स्वरूपवान, कान्तिमय, मनोहर है, जो कुछ वीर, ओज, पराक्रम, पौरुष, तेज विशेषणों से प्रकट होता है, तथा धैर्य, निर्भीकता, बुद्धिमत्ता, सौम्य, मनुष्यत्वादि गुणों से जो विचार उत्पन्न होते हैं, वे सब 'वीर्य' इस शब्द के अन्तर्गत हैं। जैसे सूर्य संसार को प्रकाश देता है, इसी प्रकार "वीर्य" मनुष्य, पशु, पक्षी और वृक्ष में अपना प्रभाव दिखलाता है जिस प्रकार सूर्य की रश्मियों से रंग विरंगे फूल विकसित होकर प्रकृति का सौन्दर्य बढ़ाते हैं इसी प्रकार यह शुद्धवीर्य भी अपने भिन्न भिन्न स्वरूपों में अपनी प्रभा की छटा दिखाता है।

संसार वीर्यवान के लिये है वीर्यवती जातियों ने संसार में राज्य किया और वीर्य हीन होने पर उनका नामोनिशान मिट गया। जिन प्रसिद्ध मुसलमान वीरों ने अपनी चमकती हुई तलवारों से योरुप एशिया में बड़े बड़े साम्राज्य स्थापित किये थे, वे व्यभिचार आदि दोषों में फंस कर अपना सर्वस्व खो बैठे, जिन महाराष्ट्र शूरवीरों ने मुसलमानी राज्य को छिन्न भिन्न कर भारत में हिन्दू राज्य स्थापित किया था वेही विषय भोग, परस्पर की फूट, तथा कलह के कारण अपनी सब आशाओं पर पानी फेर बैठे। योरोप की बड़ी बड़ी जातियों का इतिहास भी इसी वीर्य की महिमा को बतलाता है। योरोप की जिस स्पेन जाति ने नई दुनियां में अपनी विजय पताका उड़ाई थी, वही स्पेन समृद्धिशाली होने पर विषय भोग का शिकार बन गया, और अपने एक एक उपनिवेश को वीर्य हीनता बस खो बैठा। यद्यपि तोप बंदूक, तथा सैन्य-संघ युद्ध में विजय कीर्ति प्राप्त करने में बड़ी भारी सहायता देते हैं, परन्तु उन सबकी तह में, उनकी जड़ को मजबूत करने वाला, उनमें धैर्य, सहनशीलता आदि सच्चे वीरोचित गुणों का भरने वाला यदि कोई है तो वह 'वीर्य" ही है। किसी जातिके पास बड़े आविष्कार न हों, भले ही वह जंगी राष्ट्र न हो, किन्तु यदि उसके पास चरित्र बल का संगठित करने वाला तथा दैवी गुणों का विकास करने वाला 'शुक्र' है तो उस जाति के बच्चे कभी भी संसार के सामने सिर नहीं झुका सकते।

इसलिये वीर्य के इन गुणों की महिमा को हमें स्पष्टतया समझ लेना चाहिए और यदि संसार में रह कर अपने जीवन को सार्थकता को सिद्ध करने की आकांक्षा है तो इस रत्न की रक्षा करने में अपनी सब शक्तियां को लगा कर इसके द्वारा दैवी गुणों के प्राप्त करने में कटिबद्ध होना चाहिये।

प्राण-भूत इस शक्ति को खो देने से मनुष्य प्राकृतिक परिवर्तनों का सामना नहीं कर सकता। साधारण शीतवायु उसको जुकाम लगा देता है और वह छोटे छोटे कारणों से झट खटिया की शरण लेने लगता है। रुधिर की गति मंद हो जाने के कारण उसका हाजमा बिगड़ जाता है और संग्रहणी, बवासीर, क्षय (तपेदिक) आदि रोग उस पर अपना अधिकार जमा लेते हैं।

———

यह ठीक है कि परमेश्वर प्रत्येक जीव को भोजन देता है, परन्तु यह भी ठीक है कि वह किसी के मुख में ग्रास नहीं रख जाता।

× × ×

विन्दुभेद योग का साधन।

(श्री०-संकीर्तन)

दोनों कानों के छिद्रों को यदि एक लकीर सीधी स्तक के भीतर से खींचकर मिलाया जावे और मध्य से पीछे को एक लकीर खींची जावे तो मस्तक भीतर जहां दोनों लकीर एक दूसरे को काटेंगी, हीं चेतन विन्दु का स्थान है। यह विन्दु शरीरिक र आध्यात्मिक दोनों दृष्टियोंसे बहुत महत्व पूर्ण है। ध्रुँग योग में इसी स्थान को त्रिकुटी कहते हैं। द्रष्टा. ान और दृश्य का मूल यही है। इससे ऊपर सहस्त्रार ओर बढ़ने पर प्रकृति छूट जाती है। कुण्डलिनी ग में इस स्थान को शिव लिङ्ग का स्थान मानते । व्यापक पुरुष प्रकृति के आधार पर यहीं चिह्न प में निवास करता है। सीधे शब्दों में यह कारण रीर जो कि अहंकारात्मक है, उसीका केन्द्र है। सीसे सूक्ष्म और स्थूल दोनों संचालित होते हैं और स्वयं हृदयस्थ चेतन से शक्ति लेकर कार्य शील ता है। हृदय में ध्यान सबके लिये सुगम नहीं र यहां चमत्कार शीघ्र दृष्टि पड़ते हैं। अतः साधक लिये यह सरल पड़ता है।

इसी विन्दु पर दृष्टि स्थिर करके मेस्मेराइजर मी को निद्रित करता है। निद्रावस्था में सोते क्ति के भ्रूमध्य पर दृष्टि जमाकर दी हुई आज्ञा पना कुछ न कुछ प्रभाव प्रकट करके ही रहती । अतः ठीक समय पर नियम पूर्वक इस विन्दु ध्यान करते हुये दृढ़ संकल्प का उपयोग करने मनको अभीष्ट दिशा में ले जाया जा सकता है।

इतना स्मरण रखना चाहिये कि जहां इस विंदु महान लाभ उठाया जा सकता है, वहीं बहुत ी हानि भी हो सकती है। भ्रूमध्य में ध्यान ते समय जो साधक विषयों का या संसार का न्तन करेगा, उस की वासनायें और दृढ़मूल होती वेंगी। वह अत्यधिक आसक्त और विषयी हो जावेगा। अतएव जब तक भ्रूमध्य में ध्यान किया जावे, कोई विषय, अशुभ वासना मन में न आने पावे! बल पूर्वक मन को लक्ष्य में अथवा शुभ संकल्पों में लगा रखना चाहिये। यदि मन अत्यधिक चंचल होरहा हो और न मानता हो तो उस समय ध्यान करना बन्द कर देना चाहिये। अथवा खुली दृष्टि से नाक की नोक पर त्राटक करना चाहिये।

बहुधा इस विन्दु पर ध्यान करने वालों को नाना प्रकार के दृश्य दिखाई पड़ते हैं। शब्द सुनाई देते हैं। वे उनके देखने और सुनने में तल्लीन हो जाते हैं। वे समझते हैं कि उनको उन्नति हो रही है। लेकिन परिणामतः रूप और शब्द में उनकी आसक्ति बढ़ती जाती है। वे संसार में अत्यधिक आसक्त होते जाते हैं। साधक को सावधानी पूर्वक उन शब्द और दृश्यों से ध्यान हटा रखना चाहिये। उसे अपने मंत्र के जप और चेतन बिन्दु पर स्थिर रहना चाहिये। ये सब दृश्य चाहे वे कुछ भी हों (हंस, शिव, कृष्णादि) केवल मानसिक हैं—मनकी कल्पना हैं। भगवान का विशुद्ध रूप वासनाओं से परे होने पर ही प्राप्त हो सकता है।

निशीथ की नीरवता में अथवा ब्रह्ममुहूर्त में जब आप ध्यान करने बैठते हैं, नेत्रों को बन्द करके मनको चेतन विन्दु पर एकत्र कीजिये। प्रणव, राम या सोऽहं का जप कीजिये। दृढ़ धारणा कीजिये कि आपके मन से संसारासक्ति दूर हो रही है। संसार में आपकी कोई आसक्ति नहीं। दो चार मिनट वैराग्य प्रधान विचारों का चिन्तन कीजिए। फिर ध्यान कीजिये कि आपका मन चंचलता छोड़कर शान्त हो रहा है। मैं शान्त हूं। मुझमें चंचलता का लेश नहीं। कोई भी विचार मुझे अपनी ओर नहीं खींच सकता। मुझमें कोई विचार नहीं हैं।' इन भावनाओं की बार बार आवृत्ति कीजिये।

थोड़े दिन के अभ्यास के पश्चात ज्योतिर्मय चेतन विन्दु दृष्टि पड़ेगा। यदि कोई और दृश्य भी

सामने आवे तो मनको उधर से हटाकर केवल बिन्दु पर स्थिर करें। केवल बिन्दु पर एकाग्र हों। कोई विचार न उठे तो अच्छा। मन न माने तो वैराग्य, तत्व विचार या भक्ति के पवित्र विचार ही उठने देना चाहिये। मंत्र का जप यदि ध्यान की एकाग्रता के कारण छूट जावे तो उसकी कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिये। उसे छूट जाने दीजिये।

प्रथम दिखाई पड़ने के पश्चात् बिन्दु कभी बढ़ेगा, कभी घटेगा. कभी हिलता जान पड़ेगा, कभी लुप्त हो जावेगा, कभी बहुत से बिन्दु दृष्टि पड़ेंगे, कभी उसमें अनेक प्रकार के दृश्य दिखलाई पड़ेंगे। आप इन सब परिवर्तनों पर ध्यान न देकर केवल बिन्दु का तटस्थ निरीक्षण कीजिये। लगातार ऐसा करने से कुछ काल में बिन्दु अपनी समस्त विकृतियों को छोड़कर स्थिर एवं उज्वल हो जावेगा। मन को उसी पर पूर्णत: एकाग्र कर दीजिये। इस पूर्ण एकाग्रता में आप देखेंगे कि बिन्दु फट गया है। उसके भीतर छिद्र होगया है। इसी को बिन्दु-वेध कहते हैं। बिन्दु के मध्य का यही छिद्र सहस्रार के भीतर जाने का मार्ग है। बिन्दु वेध होते ही स्वयं सहस्रार का आकर्षण उस मार्ग से आपको उत्थित कर लेगा और परमाभीष्ट अनिर्वचनीय स्थिति आपको प्राप्त होगी।

———

दुनियां में जितने दुष्ट मनुष्य हुए हैं उनमें से प्रायः सभी बचपन में अपने माता पिता और बड़े बूढ़ों की अवज्ञा करने वाले थे।

× × ×

प्रसन्नता एक कुंजी है जो दूसरों के हृदय के दरवाजे को हमारे लिए खोल देती है।

× × ×

दूसरों के सत्कार्यों में बाधा डालने वाले खुद नष्ट हो जाते हैं जैसे फसल को नष्ट करने वाला ओला खुद भी नष्ट हो जाता है।

× × ×

दो उपयोगी रसायनें।

अखण्डज्योति के कार्यकर्ताओं द्वारा इस वर्ष पर्वतीयवन्य प्रदेशों की यात्रा के समय कुछ अमूल्य जड़ी बूटियां लाई गई हैं। इनके गुण असाधारण और आश्चर्यजनक हैं इन बूटियों के वैज्ञानिक संमिश्रण से दो रसायनें बनाई गई हैं (१) ओज वर्धक रसायन (२) गर्भ पोषक रसायन।

ओजवर्धक रसायन के सेवन का मस्तिष्क और हृदय पर सीधा असर होता है। मस्तिष्क की थकान और कमजोरी दूर होकर एक नवीन चेतना आती है। स्मरण शक्ति विचार शक्ति, निर्णय शक्ति, दूर दर्शिता, विवेक शीलता हाजिर जवाबी, सूक्ष्म चैतना तथा बुद्धिमत्ता में वृद्धि होती है। हृदय बलवान होता है, जिससे रक्त संचालन का कार्य सुचारु रूप से होने लगता है। आलस्य भय,चिन्ता और घबराहट का स्वभाव कम होकर उत्साह, साहस, निर्भयता तथा कार्यकुशलता बढ़ती है। ओज बढ़ने से इन्द्रियों की शक्ति स्थिर रहती है और आयु बढ़ती है। यह रसायन सात्विक गुण वाली है इसलिए सेवन करने वाले का स्वभाव भी सतोगुणी बनता है।

गर्भपोषक रसायन-गर्भवती स्त्रियों के लिए है। इसे सेवन करने से गर्भ की स्थिति उत्तम होती है। जिन स्त्रियों को गर्भपात होजाता है या बच्चे होकर मर जाते हैं या कमजोर पैदा होते हैं उनके लिए तो यह बड़े काम की चीज हैं। इस रसायन के पोषक तत्वों के द्वारा गर्भ स्थित बालक पुष्ट हो जाता है। रंग का उज्वल, तेजस्वी, बुद्धिमान, अच्छे स्वभाव का तथा स्वस्थ होता है। यह रसायनें प्रिय पाठकों को बिना मूल्य मिलेंगी। भेजने के खर्च के लिए छः आने के टिकट भेजने चाहिये सेवन विधि साथ है। यह थोड़ी मात्रा में है इसलिए जरूरत मंद ही मँगावें। एक व्यक्ति को एक ही रसायन मिलेगी।

— व्यवस्थापक-"अखंडज्योति" मथुरा।

नाम-चिकित्सा ।

(लेखन – श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज)

जब अंगरेजी डाक्टरी चिकित्सा, Allopathy, [हो]मियोपैथी, क्रोमोपैथी, आयुर्वेद चिकित्सा, प्राकृ[ति]क चिकित्सा इत्यादि सब प्रकार के इलाज किसी [रो]ग की चिकित्सा करने में फेल होजाते हैं तब [भ]गवन्नाम की चिकित्सा ही केवल तुम्हें बचा सकती [है]। भगवान का नाम अनुभूत स्वर्ण योग है, यह [ए]क अचूक औषधि, न फेल होने वाली अमर बूटि, [स]ब रोगों के लिये है। चिंता, निराशता, अन्धकार [के] समय जीवन के नित्य के संग्राम में और अस्तित्व [के] रण क्षेत्र में यह सब से उच्च, आदर्श और [अ]मोघ अस्त्र है।

नाम में एक रहस्यमयी शक्ति है। ईश्वर के [ना]म में अनिर्वचनीय बल है। परमात्मा के नाम में [स]ब आध्यात्मिक शक्तियां छुपी हुई हैं। यह च्यवन[प्र]ाश की बालाई है, मकरध्वज का सार है, बसन्त [कु]सुमाकर और स्वर्ण भस्म का इत्र है। यह [मि]क्चर १६१०१६४ का आध्यात्मिक रहस्य पूर्ण [इ]जैक्शन है।

नाम जप की यह औषधि हर रोग के लिये तुम [स्व]यं प्रयोग कर सकते हो। इस आश्चर्यजनक [औ]षधि को तुम स्वयं अपने पर, अपने घर के किसी [प्र]ाणी पर अथवा बाहर भी प्रयोग कर सकते हो। [र]ोगी के पास बैठ जाओ और सच्ची भक्ती और [श्र]द्धा से भगवान के नाम की ध्वनि लगाओ। नाम [य]ही हैं हरि ॐ, श्री राम, ॐ नमः शिवाय आदि २ [न]ाम और 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे, [ह]रे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे' आदि [म]ंत्र। प्रभु की दया और कृपा के लिये प्रार्थना [क]रो सब रोग, दुख और पीड़ा समाप्त हो जायगी। [प्र]ति दिन कम से कम दो घंटे प्रातः और दो घंटे [स]ायं नाम जप की चिकित्सा करनी चाहिये। तुम थोड़े ही समय में इनका चमत्कार और प्रभाव देख लोगे। डाक्टर और रोगी दोनों को प्रभु के नाम, उसकी कृपा और दया पर पूर्ण विश्वास रखना चाहिये। सच्चे डाक्टर तो प्रभु नारायण ही हैं।

श्री धन्वन्तरि जी महाराज त्रिलोक के वैद्य ने (जिन्होंने आयुर्वेदिक विज्ञान का आविष्कार किया) स्वयं ऐसा कहा है।

"यह मेरा निश्चित और सत्य वचन है कि अच्युत, अनंत, गोविन्द नामों के जप के उपचार से सारे रोग नष्ट हो जाते हैं"। सब चिकित्साओं में प्रभु नारायण ही एक मात्र चिकित्सक हैं। तुम्हें मालूम है कि मरणासन्न सम्राट को संसार के श्रेष्ठ डाक्टर भी नहीं बचा सकते। तुमने यह भी सुना होगा कि बहुत से बुरे से बुरे रोगों से पीड़ित रोगी अच्छे होगये हैं जहां पृथ्वी के होश्यार से होश्यार डाक्टरों ने इनको लाइलाज कहकर जवाब दे दिया था। बहुत से संतों का नाम आपने सुना होगा जिन्होंने अनेक रोगियों को प्रभु का नाम सुनाकर अनेक असाध्य रोगों से मुक्त कर दिया। कबीर साहब ने केवल एक बार राम के नाम सुनाने से अनेक कोढ़ियों का कुष्ट दूर कर दिया था। इससे यह बात पूर्णतया सिद्ध होती है कि सब इलाजों में भगवान का हाथ ही काम करता है।

प्रभु का नाम तो मरण जीवन के रोग को भी दूर कर देता है और वह मोक्ष और जीवन प्रदान करता है। साधारण रोगों का तो कहना ही क्या है। आवश्यकता है श्रद्धा और प्रेम की!

उनसे मत डरिए जो आपके शरीर को नष्ट कर सकते हैं। आप तो उनसे डरिए जो आपकी आत्मा को पतन के मार्ग में लेजा कर नष्ट कर देने वाले हैं।

× × ×

निरभिमानी धन्य हैं, क्योंकि उन्हीं के हृदय में ईश्वर का निवास होता है।

नेत्र रक्षा के कुछ नियम।

(लेखक—श्री गणेशदत्त "इन्द्र" आगर)

१—जो लोग मिर्च मसाले और खटाई अधिक सेवन करते हैं उनकी दृष्टि कमजोर हो जाती है। लाल मिर्चों का अधिक मात्रा में सेवन करना आंखों के लिये अत्यन्त अहितकर है।

२—जो लोग नियमित रूप से दतून नहीं करते उनकी आँखें खराब हो जाती हैं। दतून से यहां केवल दांतों को साफ करने का मतलब नहीं है। दांत तो साफ किये ही जावें। साथमें जीभ को कण्ठ तक तालू को हलक तक और जबान के नीचे के गड्ढे को भी खूब अच्छी तरह नित्य प्रातःकाल और इसी तरह सायंकाल के समय साफ करना चाहिये।

३—तमाम रोगों की उत्पत्ति पेट की खराबी से ही होती है, अतएव आंखों की खराबी को रोकने के लिये पेट साफ रखना चाहिये। कब्ज कभी नहीं होने देना चाहिये। कब्ज होजावे तो त्रिफला लेकर पेट साफ कर देना चाहिये।

४—तंग जूते पहिनने से भी आंखें कमजोर होती हैं। जिन जूतों में पंजे की अंगुलियां दबती हों वे नेत्रों को हानिप्रद होते हैं। पसीने से आने वाली जूतों की बदबू, मैले, गन्दे दुर्गंधित मौजे—जुर्राब भी आंखों को हानि पहुंचाते हैं। ऐसे जूते जिनमें पंजे न दबें या पैर खुले रहें जैसे चप्पल, खड़ाऊ वगैरा आंखों के लिये हितकर हैं।

५—भोजन के बाद लकड़ी की खूंटीदार खटाऊँ पहन कर कुछ देर टहलने से नेत्रों की ज्योति बढ़ती है।

६—बिना किसी कारण अथवा रोग के आंखों को सेकना या गर्मी पहुँचाना हानिकारक होता है। आंखों को सदा ठण्डी रखने का ध्यान रखना चाहिये। आग के आगे बैठ कर तापना आंखों को हानि पहुँचाता है। धुंए से आंखों को बहुत बचाना चाहिये।

७—बिना किसी बीमारी के आंखों में अंजन या सुर्मा लगाना ठीक नहीं। किसी नादान हकीम के यहां अथवा बाजारू दवा बेचने वालों का अंजन या सुर्मा कभी भी आंखों में नहीं डालना चाहिये।

८—ठण्डी हवा के झोंकों से और लू से आंखों को बचाते रहना चाहिये।

९—ऐसी चीजों को नहीं देखना चाहिये जिनमे आंखें चौंधिया जाती हों। सूर्य को ओर देखने से आँखें बहुत खराब हो जाती हैं इसी तरह गैस के लैम्प, बिजली की रोशनी आदि के चौंधे से भी बचना चाहिये। मोटरों के आगे की रोशनी, टॉर्च, रेलों की सर्चलाइट सभी आंखों की दुश्मन हैं इनसे बचना चाहिये। टॉर्च या बिजली की बत्ती को खोलना और फौरन बन्द करना आंखों को अत्यन्त हानि पहुँचाता है। तेज धूप में घूमना फिरना भी आंखों को अहितकर होता है।

१०—लिखने पढ़ने का प्रभाव आंखों पर पड़ता है। इसलिये बहुत समय तक पढ़े जाना या लिखे जाना ठीक नहीं है। जब आंखों को थकान मालूम हो तब काम बन्द कर देना चाहिये और आंखों को पूरा आराम देकर फिर कार्य शुरू कर देना चाहिये। पलकें मूंदकर लेट जाने से या हरी भरी वाटिका, जंगल आदि को देखने से नेत्रों को आराम पहुँचता है। आँखों की पलकों को बार २ खोलने मूंदने से भी लाभ होगा।

(११) पढ़ते लिखते समय अत्यन्त तेज प्रकाश की जरूरत नहीं है। धूप में या बिजली आदि के प्रखर प्रकाश में लिखने पढ़ने या नेत्र सम्बन्धी कार्य करने से आंखें खराब हो जाती हैं। किसी काम को करते समय प्रकाश ऐसी जगह न रखना चाहिये जिसका चौंधिया आंखों पर पड़े।

(१२) चलती हुई गाड़ी में, लेटकर, आड़ी टेढ़ी आंखें रखके पढ़ने से या काम करने से आंखें

खराब हो जाती हैं। बिना आंखों की खराबी के बहुत पास से पढ़ना, बुरी आदत है। आंखों से काम लेते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि आंखों की ऊपरी पलकें ऊपर की ओर ज्यादा न चढ़ने पावे। वे लगभग आधी आंखों को और चौथाई पुतलियों को ढांके रहें।

(१२) आजकल बाजारों में रबर के जूतों (रबर सोल बूट) की बिक्री बहुत है। इनके पहनने वालों की आंखे खराब हो जाती हैं। रबर मन्द वाहक है। पैरों की बाहर निकलने वाली गर्मी का वहां निरोध होता रहता है। इससे नेत्रों को हानि पहुंचती है।

(१४) जो लोग अपनी आंखों को ठीक रखना चाहते हैं या जिनकी आंखें बिगड़ गई हों और ठीक करना चाहते हों उन्हें नेती क्रिया करना चाहिये। जल नेती उत्तम है। नाक के नथुनों से, सुबह बिछौने से उठते ही जल पीना जल नेती कहलाता है। दृष्टि दोषों को हटाने के लिये यह रामबाण है। साथ ही अनेक दूसरे रोगों को भी मिटाती है। जो जल-नेती न करसकें उन्हें सूत की नेती करनी चाहिये। एक फुट लम्बी सूत की रस्सी, जो नाक के छिद्र में काफी ढीली जासके और जिसका पिछला ५-६ इंच हिस्सा बिना बटा हुआ अर्थात खुला हुआ बिखरा हो, नाक के नथुने में धीरे धीरे डालकर मुंह में से निकाली जाय। दोनों नथुनों से यह क्रिया की जानी चाहिये। इस क्रिया को किसी अनुभवी की देख रेख के करना चाहिए।

(१५) हमेशा मुँह ठण्डे पानी से ही धोया जाय। गर्दन के ऊपरी हिस्से को ठण्डे पानी से ही धोना चाहिये। क्योंकि नेत्रों की ज्योति स्थिर रखने के लिये मस्तिष्क का ठण्डा रहना जरूरी है।

(१६) मादक पेय का आंखों पर घातक प्रभाव होता है। कभी भी चाय, काफी, मद्य, भांग, गांजा, चरस, चण्डू वगैरः नहीं काम में लाना बीड़ी तम्बाकू आंखों के परम शत्रु हैं।

(१७) प्रातःकाल सूर्योदय के पश्चात एक घण्टे तक आँखें मूंदकर सूर्य की ओर बैठने से आँखें स्वस्थ और सबल होती हैं।

(१८) शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी, पौर्णिमा और कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को चन्द्रमा की ओर एक टक दृष्टि देखने से दृष्टिमांद्य नहीं होता।

(१९) भोजन करने के पश्चात हाथ धोकर गीले हाथ नेत्रों पर फेरने से उनकी ज्योति बढ़ती है।

(२०) आंखों को सबल रखने के लिये आंखों के हल्के व्यायाम करने चाहिये। जल्दी जल्दी पलकें मारना, हथेली से धीरे धीरे मुंदी हुई आंखों को मसलना अच्छे व्यायाम हैं।

(२१) नंगे पांवों ओस पड़ी दूब या घास पर नित्य टहलने से आँखों की ज्योति स्थिर रहती है।

आशा है इन कुछ नियमों के अनुसार व्यवहार करके पाठक अपनी आंखों की हिफाजत करते हुए "पश्येम शरदः शतम्" को सत्य सिद्ध करने में सहायक बनेंगे।

ईश्वर अपनी पूजा कराने से खुश नहीं होता, उसे तो वह प्यारा है जो उसके पुत्रों से प्रेम करता है।

× × ×

सात्विक सहायताएं।

इस मास ज्ञान यज्ञ के लिए हमें निम्न सहायताएं प्राप्त हुई हैं। अखंड ज्योति इनके प्राप्ति कृतज्ञ है।

१५) श्री मती सावित्रीदेवीजी उन्नाव.
४) श्री ज्योती प्रसादजी पिपिल, आगरा
४) श्री मैकूलालजी, जबलपुर
२) श्री ठाकुरप्रसादसिंहजी, नौतनवा बाजार
२) श्री रघुवरदत्तजी, चालसी
२) श्री नारायणप्रसादजी 'उज्वल' मूँदो
१) श्री देवशंकरप्रसादजी, बजीरगंज

समानता से मित्रता

(सेठ प्रतापमलजी नाहटा)

मित्रता समानशील व्यक्तियों में ही होती है और ऐसी मित्रता ही अन्त तक निभती है। जो मित्र समानशील नहीं हैं, उनकी मित्रता वंचकता मात्र है, वह किसी दिन नष्ट हो जायगी या शत्रुता में परिणत हो जायगी। महाराज द्रुपद और द्रोण कहने को तो बालसखा थे। दोनों एक ही आश्रम में पढ़े और खेले-कूदे थे। बचपन की मित्रता गाढ़ी होती है। पर द्रुपद और द्रोण की मित्रता गाढ़ी नहीं थी, जीवन मार्ग भिन्न होते ही वह मित्रता जाती रही। आचार्य उस मित्रता को नहीं भूले थे पर द्रुपद भूल गये, क्यों कि द्रुपद ऐश्वर्यशाली सिंहासनाधीश्वर हुए और द्रोण दरिद्र के दरिद्र ही रह गये। द्रोण को यह नहीं मालूम था, कि राजा जो हमारा बालसखा था, हमें भूल जायगा। वे यह समझते थे कि बालसखा के लिये हमारे हृदय में जो प्रेम है वही प्रेम राजा द्रुपद के हृदय में भी होगा और इस लिये यह तपस्वी ब्राह्मण एक महान तप की सिद्धि के पश्चात् सबसे पहले बड़े प्रेम और आनंद के साथ अपने बालसखा राजा द्रुपद से मिलने दौड़ गये। पास पहुंचतेही द्रोणाचार्य ने कहा,—"राजन्! मैं तुम्हारा मित्र हूं।" आचार्य और कुछ नहीं कह सके, क्यों कि इस दरिद्र ब्राह्मण का यह कहना कि मैं तुम्हारा मित्र हूं, उस राजमदान्ध राजा को सहन नहीं हुआ। वह आग बबूला हो उठा। लाल पीली आंखें निकाल और भौंहें चढ़ाकर उसने कहा "अरे दरिद्र ब्राह्मण! तुम मुझको अपना सखा कहते हो? क्या कभी किसी ऐश्वर्यशाली राजा और श्री हीन दरिद्र ब्राह्मण से भी मित्रता हुई है? संसार में अनेक मित्र ऐसे ही होते हैं जो यथार्थ में मित्र नहीं होते और मित्र धर्म का पालन नहीं, प्रत्युत स्वार्थ साधन किया करते हैं और जब तक जिससे स्वार्थ सिद्ध होता है, तब तक उसे मित्र बनाये रहते हैं, पीछे से दूध में से मक्खी की तरह निकाल कर फेंक देते हैं इस प्रकार की मित्रता का जो वर्णन द्रुपद राजा ने आचार्य द्रोण को फटकारते हुए किया है, उसका नमूना साधारणतः सर्वत्र देखने में आता है। और बहुतों के विचार मित्रता के सम्बंध में वैसे ही हो जाते हैं।

द्रुपदराज कहते हैं—"ऐश्वर्यशाली नरपतियों के साथ तुम्हारे जैसे स्त्री हीन मनुष्य की मित्रता हो, यह नितान्त असम्भव है। बचपन में जरूर तुम्हारे साथ मित्रता थी परन्तु इस समय वैसी मित्रता का होना किसी प्रकार उचित नहीं है। किसी के साथ किसी को सदा मित्रता नहीं होती। या तो काल उसे नष्ट करता है या क्रोध से उसका नाश हो जाता है। इस लिये तुम पहले की उस मित्रता को अब दूर फेंक दो। हे प्रिय! पहले तुम्हारे साथ जो मित्रता थी, वह एक अर्थ के निमित्त थी। पंडित के साथ मूर्ख की और वीर के साथ कायर की मित्रता जैसे कभी नहीं होती, वैसे ही धनवान के साथ दरिद्री की मित्रता होना भी असंभव है, इस लिये पहले की मित्रता बनी रखने के लिये तुम यहां क्यों आये हो? हे ब्राह्मण! धन और ज्ञान में जो तुम्हारी ही जैसे हों उन्हीं से मित्रता और बन्धुभाव स्थापित करो। छोटे-बड़े में मैत्री नहीं हुआ करती है।

मित्र प्रेम से आये हुए द्रोण, राजा का यह भाषण सुनकर वहां से चले गये और सदा के लिये द्रुपद-राज के बैरी हो गये। द्रुपद और द्रोण बचपन के सखा थे और पीछे एक दूसरे के बैरी हो गये। इसका कारण क्या है? कारण यही हुआ, कि दोनों समान शील नहीं थे, दोनों का चरित्र एक दूसरे के साथ विपरीत था। मित्रता का जो स्नेह द्रोण में था वह द्रुपद में नहीं था। द्रुपद को

देशी नरेशो; चेत जाओ !

(लेखक—श्री॰ राजकुमार श्री अप्पा साहब)

जमाने की ओर से आंखें मूंद कर चलना रजवाड़ों के हक में अच्छा नहीं हो सकता उन्हें सदा के लिये यह महसूस कर लेना चाहिये कि वे एक ऐसे लोकतंत्र युग में हैं जिसमें सामन्तशाही संगठनों का अस्तित्व बर्दाश्त नहीं किया जा सकता जब तक ये प्रजा के सुख को आधार मान कर देश की राजनैतिक आर्थिक उन्नति की योजना में उपयुक्त भाग नहीं लेते । इस समय हिन्दुस्तान के कोने कोने की जनता जागृति हो चुकी है और वह देश की संस्थाओं तथा आदर्शों को छानबीन इस अभिप्राय: से कर रही है कि अगर ये संस्थाएं और आदर्श उसके लिये उपयोगी हों तो उन्हें कायम रखे अन्यथा मेट दे ।

देशी नरेशों को भी अपनी स्थिति महसूस करनी है। उन्हें मोटर गाड़ियां, नफीस कालीन आदि सामान रखने तथा उम्दा खाना खाने का क्या अधिकार है ? जबकि इन्हें आराम की ये चीजें प्रदान करने वाले गरीबी और मुहताजगी में मर रहे हैं तो इन रजवाड़ों को इन चीजों से मौज करने का हक कैसा ? प्रजा इन्हें धन इस लिये देती है कि ये उसका संरक्षण करें और उसके हित में शासन चलावें । प्रजा के पास इस बात के काफी सबूत हैं कि राजाओं ने अपने इस कर्तव्य का पालन नहीं किया है और इस लिये राजाओं को अपनी इस कर्तव्यपराङ्मुखता को महसूस करना जरूरी है। इन्हें यह महसूस करना है कि जितने में ये एक मोटर रखते हैं उतने में एक साल के लिये ४० गाँवों में स्कूल चलाने की व्यवस्था की जा सकती है। रजवाड़ों को प्रजा को ज्ञानप्राप्ति के साधन—स्कूलों—से वंचित रखने का क्या अधिकार है ? देशी नरेशों को यह भी समझना है कि जितने में एक राजमहल बनता है उतने में हजारों व्यक्तियों को मनुष्य के रहने लायक झोंपड़ियां प्रदान की जा सकती हैं। राजाओं की नसनस में जो खून बहता है वह प्रजा के पसीने से पैदा हुआ है । हमारा अस्तित्व प्रजा पर ही निर्भर है । अगर हम इन बातों को महसूस कर लें तो प्रजा पर लाठी प्रहार कराने की हिम्मत नहीं कर सकते ।

आखिर प्रजा हमसे चाहती क्या है ? यही न कि उस मनुष्य की तरह जीने का अधिकार मिले ? यह तो उसका राष्ट्रीय अधिकार है जो उसे मिलना ही चाहिये । जो काम करता है उसे उसका मिहनताना मिलना जरूरी है ।

भारतवासियों ने ये बातें महसूस की हैं । उन्होंने यह भी समझा है कि एक राजनैतिक सत्ता का अस्तित्व उनके लाभ के लिये होना चाहिये जिनसे वह बनी है । इस वक्त की जागृत से लड़ कर पार पा जाना राजाओं के लिये असंभव है । एक व्यक्ति अथवा एक समूह से जनसाधारण हमेशा ही अधिक शक्तिशाली रहा है । अनेक राजाओं ने

बचपन की वह मित्रता स्वार्थ के लिये थी यह स्वयं उन्होंने ही स्वीकार किया है पर द्रुपद का यह कहना, कि धनी और दरिद्र में मित्रता नहीं हो सकती मिथ्या है । यह सच है कि वीर कायर की मित्रता नहीं होती क्यों कि वीरता या कायरता शील–स्वभाव में शामिल है और समान शील वालों में ही मित्रता हो सकती है परन्तु धन का होना या न होना शील स्वभाव की कोई बात नहीं है । दरिद्र पुरुष भी त्यागी हो सकता है और धनी पुरुष कृपण हो सकता है । उदारता और कृपणताशील है, उदार और कृपण एक दूसरे के मित्र नहीं हो सकते। पर धनी और दरिद्र हो सकते हैं । अवश्य ही धनी और दरिद्र की मित्रता के उदाहरण संसार में थोड़े हों पर वे दुर्लभ उदाहरण ही मैत्री के आदर्श हैं ।

इस सत्य का अनुभव कर लिया है। राजा आते और जाते हैं, साम्राज्यों का उत्थान-पतन होता है, मगर प्रजा जैसी की तैसी रह जाती है। चाहे जितना लाठी प्रहार और दमन कीजिये आप प्रजा को हरा नहीं सकते।

नरेशो! सावधान हो जाइये। आप जो महसूस करते हैं कि आप ताकत वाले हैं, वह गलत है। जन-आन्दोलन रूपी तुषारपात के आगे आपकी ताकत टिक नहीं सकती। आपके पीछे जो ताकत है वह प्रतिक्रिया और अत्याचार की ताकत है जो आपको इस तुषारपात से बचा नहीं सकती। राजाओ! सचेत होकर यह महसूस कीजिये कि आज तक किसने आपको आहार दिया है? किसने आपको पीढ़ियों से ऐश के सामान प्रदान किये है? रजवाड़ो! अपने अन्नदाताओं के आगे माथा टेकिये। सिर्फ वे ही आपकी रक्षा कर सकते हैं। लेकिन कब वे आपकी रक्षा करेंगे? तभी, जब आप अपनी वास्तविक स्थिति महसूस करेंगे और यह समझ लेंगे कि आपके शरीर के खून का एक एक बूंद प्रजा का दिया हुआ है जिसका प्रतिदान आपको उसे देना है। आप पुराने राजाओं के ध्येय को भूल गए होंगे। सेवा ही उनका धर्म था और उसे ही वे अपने अस्तित्व का आधार मानते थे। जितना ही आपने प्रजा से पाया है, उसे उतना ही अधिक देने के लिये आप जिम्मेदार हैं। लेकिन जब तक आप उसे उसका हिस्सा नहीं दे सकते जब तक आप मोटर के आराम देह गद्दों पर बैठ कर क्यों चलेंगे? और कीमती कालीनों पर क्यों सोयेंगे? आपको प्रजा के बीच प्रजा की ही तरह रहना है। तभी आप उसकी तकलीफों को समझ सकेंगे। जूता पहनने वाला ही समझ सकता है कि जूता कहां और कैसे काटता है। जनता अपनी तकलीफों को समझती है और उनका इलाज भी वह जानती है।

इस समय इस राजनैतिक विकास के युग में आपका कर्त्तव्य प्रजा का संरक्षक होकर रहना है। अब तक आप जिन चीजों को अपनी चीज समझते आए हैं समझिये कि वे उस प्रजा की हैं जिसने इन्हें पैदा किया है। इन चीजों का टुकड़ा टुकड़ा प्रजा को धरोहर के रूप में आपको रखना है। आपको प्रजा को इनका इन्तजाम सौंप देना चाहिये। अधिक से अधिक जो आप कर सकते हैं वह यह कि आप अगर यह समझें कि प्रजा का इन्तजाम ठीक नहीं है तो सच्चे दिल से उसे अपनी सलाह दे दें। प्रजा को अपना शासन खुद करने का अधिकार है और उसके लाभ की व्यवस्था करने वाले उसके संरक्षक ही हो सकते हैं।

धन और विलास रचनात्मक योग्यता तथा स्पष्ट विवेकशीलता का नाश कर देते हैं। अगर आप प्रजा को प्यार करें और उसकी सेवा करते रहें तो आप अमर हो जायें। अगर आप खुद अपना कर्त्तव्य नहीं समझ सकते तो धीमानों की बातें सुनिये और सचेत होकर आगे बढ़िये।

बीती को बिसारिये। अगर आप अब तक अत्याचारी रहे हैं तो कोई बात नहीं, प्रजा आपको माफ कर देगी। स्नेह और सहानुभूति का जवाब वह इन्हीं से देगी। वह उन्हीं का सम्मान करेगी जो उसकी सेवा करेंगे। अगर आप यह समझें कि अभी भी प्रजा आप को प्यार करती है तो आप गलती पर हैं। वह आप से प्रेम नहीं करती, डरती है। कभी आपने सुना है कि आपके सामने माथा टेकने वाले परोक्ष में क्या कहते हैं? वास्तव में उनके शब्द आदर सूचक नहीं कहे जा सकते। आप में से बहुत कम को सच्चा सम्मान नसीब हुआ होगा। आप प्रजा को प्रेम की दृष्टि से देखिये और उसकी सेवा कीजिये फिर तो कोई भी आपको आपके पद से नहीं हटा सकता। आपके लिये यही एक रास्ता है। प्रजा की सेवा और संरक्षण ही आपका धर्म और कर्त्तव्य है। जिस रास्ते अभी आप चल रहे हैं उसमें आपकी खैरियत नहीं और न आपको कोई सुख मिलेगा। आपकी सुरक्षा और सुख आपकी रियासती प्रजा और सम्पूर्ण भारतवासियों पर निर्भर है।

सभ्यता के लक्षण ।

सभ्य पुरुष ऐसी प्रत्येक बात से अपने आपको बचाने का प्रयत्न करता है, जो दूसरों के मन को क्लेश पहुंचाये या उनमें चिढ़ या खीझ उत्पन्न करे। मनुष्य को समाज में अनेक प्रकार की प्रकृति या स्वभाववाले मनुष्यों से संसर्ग पड़ता है। कहीं उसका मतभेद होता है, कहीं भावों में संघर्ष होता है, कहीं उसे शंका होती है, कहीं उसे उदासी, आक्षेप, प्रतिरोध या ऐसे अन्यान्य भावों का सामना करना पड़ता है।

सभ्य पुरुष का कर्तव्य ऐसे सब अवसरों पर अपने आपको संयम में रख सबके साथ शिष्ट व्यवहार करना है। उसकी आंखें उपस्थित समाज में चारों ओर होती हैं. वह सकोचशील व्यक्तियों के साथ अधिक नम्र रहता है और मूर्खों का भी समाज में उपहास नहीं करता। वह किसी मनुष्य से बात करते समय उसके पूर्व संबंधों की स्मृति रखता है ताकि दूसरा व्यक्ति यह नहीं समझे कि वह उसे भूला हुआ है, और वह ऐसे वादविवाद के प्रसङ्गों से बचता है जो दूसरों के चित्त में खीझ उत्पन्न करें। वह जानबूझकर संभाषण में अपने आपको प्रमुख आकृति नहीं बनाना चाहता और न वार्तालाप में अपनी थकावट व्यक्त करता है। उसके भाषण और वाणी में मिठास होती है और अपनी प्रशंसा को वह अत्यंत संकोच के साथ ग्रहण करता है। जब तक कोई बाध्य न करे वह अपने विषय में मुख नहीं खोलता और किसी आक्षेप का भी अनावश्यक उत्तर नहीं देता। अपनी निंदा पर वह कान नहीं देता न किसीसे व्यर्थ का हमला मोल लेता है। दूसरों की नीयत पर हमला करने का दुष्कृत्य वह कभी नहीं करता बल्कि जहां तक बनता है, दूसरे के भावों का अच्छा अर्थ बैठाने का यत्न करता है। यदि झगड़े का कोई कारण उपस्थित हो भी जावे तो वह अपने मन की नीचता कभी नहीं दिखाता।

वह किसी बात का अनुचित लाभ नहीं उठाता और ऐसी कोई बात मुंह से नहीं निकालता जिसे प्रमाणित करने को वह तैयार न हो। वह प्रत्येक बात में दूरदर्शी और अग्रसोची होता है। वह बात-बात में अपने अपमान की कल्पना नहीं करता. अपने प्रति की गई बुराइयों को स्मरण नहीं रखता और किसीके दुर्भाव का बदला चुकाने का भाव नहीं रखता। दार्शनिक सिद्धांतों के विषय में वह गंभीर और त्याग मनोवृतिवाला होता है वह कष्टों के सन्मुख झुकता है, कारण उनके निवारण का उपाय नहीं; दुःखों को सहता है, कारण वे अनिवार्य हैं और मृत्यु से नहीं घबराता कारण उसका आगमन ध्रुव है। चर्चा या वादविवाद में दूसरे लोगों की लचर दलीलें, तीक्ष्ण व्यंग या अनुचित आक्षेपों से परेशान नहीं होता बल्कि मृदु हास्य के साथ उन्हें टाल देता है। अपने विचार में सही हो या गलत, परन्तु वह उन्हें सदा स्पष्ट रूप में रखता है और जानबूझकर उनका मिथ्या समर्थन या जिद्द नहीं करता। वह अपने आपको लघुतर रूप में प्रगट करता है, पर अपनी क्षुद्रता नहीं दर्शाता। वह मानवी दुर्बलताओं को जानता है और इस कारण उन्हें क्षमा की दृष्टि से देखता है।

अपने विचारों की भिन्नता या उग्रता के कारण सज्जन पुरुष दूसरों का मजाक नहीं उड़ाता। दूसरों के विचारों सिद्धांतों और मन्तव्यों का वह उचित आदर करता है। वह सदा निष्पक्ष और न्यायी होता है।

संक्षेप में सभ्य पुरुष के लक्षण हैं दूसरे के भावों. विचारों व आदेशों के प्रति अधिक से अधिक उदार और उचित व्यवहार। "पड़ोसी से प्रेम करो" इस प्राचीन सिद्धांत का इसे आधुनिक रूप समझना चाहिये।

हमारा हाथ बटाइए !

'अखण्ड ज्योति' सत् ज्ञान, सद्विचार और सत्कार्यों के प्रचार के लिए कार्य करती है। यह महान कार्य परखे हुए त्यागी तपस्वी, सत्यनिष्ठ, ब्रह्मपरायण, सूक्ष्मदर्शी उद्भट विद्वानों द्वारा होता है। एक बार भी किसी व्यक्ति के हाथ में यहां का साहित्य पहुंच जाता है, उसके जीवन में भारी परिवर्तन उपस्थित हो जाता है, उसके विचार और कार्यों में सात्विकता की एक झलक स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने लगती है।

ऐसे पुनीत ज्ञान प्रसार के कार्य में हर एक पाठक को हाथ बटाना चाहिए और इस भार को उठाने में अखण्ड ज्योति के कार्यकर्ताओं के साथ अपना कन्धा लगाना चाहिए। जो सत्साहित्य अखंड ज्योति की ओर से प्रकाशित होता है उससे अधिक से अधिक लोग लाभ उठावें इस बात का यत्न उन सभी लोगों को करना चाहिए जो इस सद्ज्ञान में कुछ भी दिलचस्पी, आत्मीयता और श्रद्धा रखते हैं।

जो पाठक इस दशा में अखण्ड ज्योति की कुछ सहायता करना चाहते हैं उनके संमुख हम दो कार्य उपस्थित करते हैं। (१) अपने परिचितों मित्रों और प्रियजनों से अखण्ड ज्योति की चर्चा किया करें और उन्हें इस साहित्य को पढ़ने के लिए उत्साहित किया करें। नित्य एक नये आदमी से अखण्ड ज्योति का परिचय और अपनाने की प्रेरणा की जाय तो एक वर्ष में बहुत कार्य हो सकता है। (२) जिन लोगों में आध्यात्मिकता का अंकुर मौजूद हो ऐसे शिक्षित व्यक्तियों के तथा पुस्तकालयों के पते अखण्ड ज्योति कार्यालय में भेजें। जिन व्यक्तियों के पते भेजे जांय वे एक ही स्थान के नहीं। अपना व्यक्तिगत परिचय भले ही न हो पर जिनके विचारों के बारे में परिचय हो उनके पते भेजने चाहिए चाहे वे कितनी ही दूर के रहने वाले क्यों न हो। यह पते प्राप्त होने पर उन्हें अखण्ड ज्योति के नमूने तथा प्रेरणा पत्र भेजकर कार्यालय की ओर से उन्हें इस सत्साहित्य को अपनाने के लिए प्रभावित किया जायगा।

हमें आशा है कि प्रेमी पाठक दोनों कार्यों में सहयोग देकर सद्ज्ञान प्रसार के पुण्य कार्य में हाथ बटावेंगे। तीन पैसे का एक कार्ड खर्च करके आध्यात्मिक व्यक्तियों के और पुस्तकालयों के दस बीस पते भेजने के लिए हर एक पाठक से हमारा विशेष अनुरोध है।

—व्यवस्थापक 'अखण्ड ज्योति' मथुरा।

मातृशक्ति की महानता।

(श्री गोपालप्रसादजी 'बंशी', बेतिया)

कितने ही मंद बुद्धि कवियों ने स्त्रियों को गिरा दिया है। वे कहते हैं कि स्त्री एक भारी बला है। सांप की तरह जहर से भरी है। घर को दुखमय बनाने वाली काल-रात्रि है। वे सब नाशवंत कविता के झूठे कटाक्ष हैं। इस असार संसार में और सब पदार्थ तो परिश्रम करने से मिल सकते हैं, पर सुलक्षणा स्त्री केवल ईश्वर की कृपा से ही मिलती है। जिसकी स्त्री सुलक्षणा होती है वह कभी दुख को दुख नहीं समझता। मुझे तो पूरा विश्वास है कि संसार अगर स्त्रियों के कहे मुताबिक चले तो दुनिया स्वर्ग बन जाय। —पोप

विधाता ने स्त्री को सुंदर बनाया है इससे हम उसको महत्व नहीं देते। वह प्रेम के लिए बनायी गई है, अत. हम उससे प्रेम नहीं करते। हम उसे पूजते हैं, तो केवल इसीलिये कि मनुष्य का मनुष्यत्व सिर्फ उसीके कारण है। —लौविल

ईमानदारी का व्यापार

जिस तरह और बातों में ईमानदारी की जरूरत उसी तरह व्यापार में भी ईमानदारी से कामयाबी ती है। सब तरह के व्यवहार में ईमानदारी का याल सबसे पहला होना चाहिये। जिस तरह नेक को गौरव का और धर्मात्मा मनुष्य को दया खयाल रहता है उसी तरह व्यापारी सौदागर र कारीगर को ईमानदारी का खयाल होना हिये। छोटे से छोटे पेशे में भी ईमानदारी बरती सकती है। राज मजदूर भी अपना काम अच्छी ह करके ईमानदार बन सकते हैं। कारीगरों को । और ख्याति ही नहीं किन्तु बहुत कुछ सफलता इस बात से प्राप्त होती है कि वे जिस चीज को वें उसमें किसी तरह का धोखा न दें। सौदागरों भी सफतला इस बात से प्राप्त होती है कि वे स चीज को जैसी कह कर बेचें वह असल में ा ही हो। धोखेबाजी और धींगा धींगी से चाहे कुछ समय के लिये सफलता प्राप्त करलें, परंतु ायी सफलता ईमानदारी से ही मिलती है। मसल हूर है कि 'काठ की हांडी दूसरी बार नहीं चढ़ती' । कलई खुल जाती है तब सारी शेखी किरकिरी जाती है। किसी देशका नामबरी और वहां का ापार अथवा बना हुई चीजों की उत्तमता वहां सौदागरों और कारीगरों के साहस, प्रतिमा और ोग पर ही निर्भर नहीं है किन्तु उनकी अकलमंदी, फ़ायतसारी और इन दोनों से भी बढ़कर ईमान- री पर कहीं ज्यादा निभर है। यदि इंग्लेन्ड इत्यादि सी देश के व्यापारी इन गुणों को तिलांजलि दे दें, उनके तिजारती जहाज दुनिया के सब मुल्कों से ाल दिये जांय।

और कामों की अपेक्षा तिजारत में चरित्र की ादा कठिन परीक्षा होती है। व्यापार में ईमा- ारी स्वार्थत्याग, न्यायपरायणता और सच्चाई सबसे कड़ी परीक्षा होती है और वे व्यौपारी, जो उन परीक्षाओं में सच्चे उतरते हैं, शायद उतनी ही इज्जत के काबिल हैं जितने वे सैनिक जो तोपों के सामने भयानक धुआंधार युद्धों में अपनी वीरता का परिचय देते हैं। हम यह मानते हैं कि अनेक व्या- पारों में जो करोड़ों आदमी लगे हुए हैं वे प्रायः इस परीक्षा में सच्चे उतरते हैं और यह बात उनके लिये बड़े गौरव की है। यदि हम थोड़ी देर के लिए सोचें कि हर रोज मामूली नौकरों को, जो स्वयं बहुत थोड़ा वेतन पाते हैं कितनी बड़ी बड़ी रकमें सौंप दी जाती हैं—दूकानदारों मुनीमों, दलालों, बैंकों के मुहर्रिरों के हाथों में होकर हररोज कितना रुपया आता जाता रहता है—और इन प्रलोभनों के बीच में भी विश्वासघात के काम कितने कम होते हैं, तो यह मानना पड़ेगा कि यह प्रतिदिन की ईमानदारी मनुष्य के चरित्र के लिये बड़े गौरव की बात है। व्यापारियों को एक दूसरे का भी बड़ा विश्वास रहता है, क्योंकि वे आपस में माल उधार देते रहते हैं। व्यापार के लेन देन में यह बात ऐसी साधारण होगई है कि हमको बिलकुल आश्चर्य नहीं मालूम होता। एक विद्वान ने खूब कहा है कि— "मनुष्य एक दूसरे के साथ जो प्रेम रखते हैं उसका यह सर्वोत्तम उदाहरण है कि सौदागर अपने दूर-दूर के मुनीमोंपर—जो शायद उनसे आधी दुनिया की दूरी पर हैं—ऐसा पक्का विश्वास रखते हैं और बहुधा उन लोगों को, जिनको उन्होंने शायद कभी नहीं देखा, सिर्फ इनकी ईमानदारी के भरोसे पर प्रचुर धन भेज देते हैं।

जो सफलता बिना धोखे या बेईमानी के प्राप्त होती है वही सच्ची सफलता है चाहे मनुष्य कुछ समय तक असफलही रहे परंतु उसको ईमानदार ही रहना चाहिये। चाहे सर्वस्व जाता रहे परंतु चरित्र की रक्षा करनी चाहिये, क्यों कि चरित्र स्वयं धन है। यदि अच्छे उद्देश्यवाला मनुष्य वीरता के साथ दृढ़ बना रहे, तो उसको सफलता भी अवश्य होगी और उसको इसका सर्वोत्तम फल मिले बिना नहीं रहेगा।

आत्म-बोध ।

(लेखक – श्री रमेश. दीवा हमीदपुर)

तू अनन्त-शक्ति है, अजेय है, महान है ।
क्या तुझे अभी नहीं हुआ स्वरूप-ज्ञान है ?

तू विवेक शील, पाप-हीन है–पवित्र है,
व्यर्थ राग-द्वेष त्याग जीव मात्र मित्र है ।
तू प्रकृति रूप पुष्प से प्रसून इत्र है,
धैर्य, वीरता, प्रताप का सजीव चित्र है ।
तू अमर्त्य-पुत्र है, अतीव बुद्धिमान है ।
तू अनन्त-शक्ति है, अजेय है, महान है ॥

काम-क्रोध-लोभ-मोह से तुझे न प्रीति हो,
'स्वार्थ घोर शत्रु है' यही पुनीत रीति हो ।
तू मनुष्य है तुझे मनुष्य से न भीति हो,
प्राण भी बिसार दे जहाँ कहीं अनीति हो ॥
क्या रहा महत्व जो न शेष स्वाभिमान है ?
तू अनन्त-शक्ति है, अजेय है, महान है ।

शूर वीर त्यागते नहीं कभी परम्परा,
यातना अनेक भी सकीं नहीं उन्हें डरा ।
मार्ग शूल युक्त हो कि हो प्रसून से भरा,
धीर विघ्न देख खोजते न मार्ग दूसरा ॥
ध्येय-सिद्धि के लिये सभी सदा समान है ।
तू अनन्त शक्ति है, अजेय है, महान है ॥

जन्म कर्मवीर का अवश्य ही कृतार्थ है,
प्राण धर्म वीर का गया सदा परार्थ है ।
तू कभी खड़ा हुआ स्वबन्धु-रक्षणार्थ है,
तो सभी बसुन्धरा खड़ी महायनार्थ है ।
जो क्रिया स्वरूप है वही पुनीत ज्ञान है ।
तू अनन्त-शक्ति है, अजेय है, महान है ।